ISSN 2278-8808 SJIF 2014 = 4.889
An International Peer Reviewed & Referred
SCHOLARLY RESEARCH JOURNAL
FOR INTERDISCIPLINARY STUDIES

भारत में वैदिक नैतिक मूल्यों की शिक्षा : आर्दश समाज की आवश्यकता

कविता कन्नौजिया, Ph. D.

एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, किशोरी रमण स्नातकोत्तर, महिला महाविद्यालय मथुरा।

Abstract

नैतिक शिक्षा का अर्थ - नीति संबंधि शिक्षा। नीति संबंधित शिक्षा में सत्यभाषण, सहशीलता, विनम्रता , प्रमाणिकता से परिपूर्ण देशवासियों का चरित्र निर्माण करें। मनुष्यों को परंमपूरूषार्थ को प्राप्त कराए। शिक्षा का वेदों में स्पष्ट अर्थ में उपयोग मिलता है। माहाभारत या किरातार्जुनीय (१५ / ३७) में शिक्षा का अर्थ है - सीखना, अध्ययन करना , ज्ञान प्राप्त करना अथवा किसी कला में निपुण होना आदि। शिक्षा शब्द का ऋग्वेद में भी प्रयोग किया गया है। वेदांग के अनुसार - किसी विज्ञान का ज्ञान प्राप्त करना शिक्षा है। मुण्डकोपनिषद् के अनुसार- शिक्षित वह है जिसमें मानवता विनम्रता तथा प्रगल्भता हो।

"विद्यास्ति ज्ञान विज्ञान दर्शनः संस्कृयात्मनि"

अर्थात् शिक्षा का लक्ष्य ज्ञान विज्ञान एवं दर्शन से आत्मा में एक प्रकार का संस्कार उत्पन्न करना है। नैतिक मूल्यों के मूल में परहित (दूसरों का भला करना) का भाव होता है। हमारे आधुनिक समाज में इस भाव की कमी होती जा रही है। आज का व्यक्ति अंहकारी होता जा रहा है। सदाचार और अनुशासन कमी हो रही है।व्यक्ति के व्यक्तिव के सर्वांगिण विकास का मुख उत्तरदायित्व परिवार और विद्यालय पर होता है। यह उत्तरदायित्व तभी पूरा किया जा सकता है जब वह उसे नैतिक शिक्षा आयोग द्वारा विद्यालय पाठ्यक्रम मे सामाजिक नैतिक और अध्यात्मिक मूल्य की व्यवस्था शामिल करना परमआवश्यक है। यदि हमें अपनी सभ्यता संस्कृति को सुरक्षित व विकसित करना है तो अन्य विषयों कि भाँति नैतिक शिक्षा को उचित स्थान मिलना चाहिए। क्योंकि एक व्यक्ति अपने जीवन दर्शन, प्रेरणा, नैतिकता से आत्मिक बल प्राप्त करता है। सत्य विनय, करूणा क्षमा स्नेह और सहानुभूति, आत्म निर्भरता, निर्भिकता और आत्म त्याग व्यक्ति को चरित्रवान बनाता है। सद्गुणों से मनुष्य को सुख सन्तोष और आनंद प्राप्त होता है। आज हमारा समाज नैतिक पतन की ओर अग्रसर हो रहा है। यदि हर व्यक्ति सदाचार के महत्व को समझें और उसमें चरित्र बल का विकास करे तों छल,कपट, पाखण्ड व्यभिचार, षड्यंत्र और संघर्ष से हमारा समाज मुक्त हो सकता है। प्रस्तुत शोध पत्र ***'भारत में वैदिक नैतिक मूल्यों की शिक्षा : आर्दश समाज की आवश्यकता' के अन्तर्गत आदर्श समाज में नैतिक मूल्यों की आवश्कता पर केन्द्रित है। यह शोध पत्र मुख्य द्वितीयक तथ्यों तथा अवलोकित गुणात्मक तत्थों पर आधारित है।***

Keywords. वैदिक, संस्कृति, नैतिक, मूल्य, शिक्षा, समाज ।

Scholarly Research Journal's is licensed Based on a work at www.srjis.com

वैदिक शिक्षा प्रणाली का मानना है कि समस्त ज्ञान मनुष्य के अन्तर में स्थित है । श्री अरविन्द के शब्दों में ''मस्तिष्क को ऐसा कुछ सिखाया नही ं जा सकता जो जीव की आत्मा में गुप्त ज्ञान के रूप में पहले से ही गुप्त न हाे।'' स्वामी विवेकानन्द ने स्पष्ट किया है-मनुष्य की अर्न्तनिहित पूणर्ता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है। ज्ञान मनुष्य में स्वभाव सिद्ध है कोई भी ज्ञान बाहर से नही आता सब अन्दर ही है ,हम जो कहते है कि मनुष्य जानता है यर्थात में मानव शास्त्र संगत भाषा में हमे कहना चाहिए कि वह अविष्कार करता है । अनावृत्त ज्ञान को प्रकट करता है। वेद भारत की प्रचीन ग्रन्थ है। वेद उपनिषण,ब्रहमण आदि वैदिक साहित्य है वैदिक साहित्य में हम वैदिक काल के लोगों के निवास क्षेत्र, उनके खान-पान व रहन-सहन को वैदिक संस्कृति कहते है। वैदिक काल में समाज की आधारभूत परिवार थी। सभी सामाजिक व धार्मिक अवसरों पर पत्नि पति की सहभागिनी होती थी, महिलाओं का जमाव था, पिता के सम्पत्ति में सभी संतानों का हिस्सा होता था। आर्थिक जीवन कृषि, कला,हस्तशिल्प ओर व्यापार पर केन्द्रित था। पशुओं में गाय को सर्वाधिक महत्वपूर्ण पशु माना जाता था। ऋग्वेद काल के लोग प्रकृति की शक्ति- अग्नि, सूर्य, वायु, आकाश, और वृक्ष की पूजा करते थे। इन्द्र, अग्नि, और वरूष सबसे अधिक मान्य देवता थे। यज्ञ आयोजन धार्मिक कृत्य था।

वैदिक संस्कृति चारों पुरूषार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) व पंचमहायज्ञों के इर्द-गिर्द ही घूमता है। पंचमहायज्ञों में प्रवृत्त होने के लिए मनुष्य का परिष्कृत (संस्कारिक) होना जरूरी है। मनुष्य संस्कारिक तभी होता है। जब वह अनुशासित प्रक्रिया से गुजरता है। भारत में अनुशासित प्रक्रिया का आधार वैदिक संस्कृति व नीतिगत मूल्य हैं। समाज एक माला की तरह है। व्यक्तियों के समूह से मिलकर एक परिवार बनता है और उन परिवारों से मिलकर एक समाज बनता है और समाजों से मिलकर एक राष्ट्र और राष्ट्रों से मिलकरा एक विश्व बनता है। समाज व्यक्तियों का समूह है। जो एक साथ मिलकर अपनी आवश्कताओं को पूरा करते है। जब एक समूह एक स्थान पर रहता है। तब निशिचित है कि उनकों हर एक भेदभाव, ऊँच-नीच रागद्वेश से सूर रहना होगा। तभी आदर्श समाज का निर्माण हो सकता है। आधार समाज का प्रमुख आधार स्वतंत्रता, समानता व बन्धूत्व है।

नैतिकता/नैतिक मूल्य वास्तव में एक ऐसी सामाजिक अवधारणा है। नैतिक मूल्य कर्तव्य की आन्तरिक भावना है और उन आचरणों के प्रतिमानों का समान्वित रूप है जिसके आधार पर सत्य-असत्य, अच्छा-बुरा, उचित-अनुचित का निर्णय किया जा सकता है । यह विवेक के बल से संचालित होती हैं। नैतिक मूल्य ही व्यक्ति को मानव होने की श्रेणी प्रदान करता है। भारतीय परम्परा में मूल्य ही धर्म (कर्तव्य) कहलाता है। अर्थात् 'धर्म' उन शाश्वत मूल्यों का नाम है जिनकी मन,,वचन, कर्म, की सत्य अभिव्यन्ति हो। धर्म का अभिप्राय मानवोचित आचरण संहिता है। नैतिकता के मापदण्ड नैतिक मूल्य है। नैतिक मूल्यों के कारण ही समाज में संगठनकारी शक्तिया व प्रक्रिया गति पाती है। विघटनकारी शक्तियों का क्षय होता है। नैतिकता से समाज में एकीकरण व अस्मिता की रक्षा होती है। नैतिकता सामाजिक जीवन को सुगम बनाती है। नैतिकता के अभाव में विश्वबन्धूत्व, मानवतावाद, समता,प्रेम, अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग, मैत्रीभाव की कल्पना नही की जा सकती। वेद भारतीय दर्शन व संस्कृति का स्रोत है । वेद मानव मात्र के कर्तव्य बोध का सबसे प्रमाणिक और महत्वपूर्ण ग्रंथ है। समाज के सभी व्यक्ति सद्भाव, समृद्धि एवं सुखपूर्वक जीवन यापन कर सके

इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर शास्त्र व संहिताएं बनी जो सनातन धर्म का धरोहर है। हमारे वेदवाणी 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' का उपदेश देता है।

हमारे प्राचीन परम्पराएं मानवीय मूल्य वेदों में वर्णित है, प्राचीन परम्पराएं व मानव मूल्य अधिकार व कर्त्तव्यबोध पर आधारित है, जो सत्य, धर्म,दया एवं दान आदि के प्रतिसमर्पित है प्राचीन मूल्यों के अवमूल्यन के कारण मानवता पीड़ित हो रही है। चारों ओर शोषण की प्रकृति और भ्रष्टाचार व्याप्त हैं। पश्चिमी सभ्यता का अन्धानुकरण किया जा रहा है। जीवन मूल्यों की इस अवनीति के कारण भारतीयता समाप्त हो रही हैं।भारतीय समाज में प्रजातन्त्र की खामिया उजागर हो रही है। विश्वबन्धूत्व की भावना क्षीण हो रही है। वैदिक चिन्तनधारा में वैदिक मान्यताओं एवं परम्पराओं का विशिष्ठ स्थान है वेद भारतीय संस्कृति की आत्मा और मानव समाज के लिए प्रकाश स्तम्भ है। वैदिक वाड.मय किसी धर्म, समुदाय या वर्ग विशेष का नही वरन् सम्पूर्ण मानवता के सुख-शान्ति के लिए कामना करता है । वैदिक नीति प्रार्थना एवं मानव सेवा, सम्मान, समर्पण आदि के साथ ही समत्व, ममत्व, और विश्वबन्धूत्व आदि भावों को व्यक्त करते हे। ये हमें मैत्री व अनन्य प्रेम का संदेश देते है। मानव मात्र के लिए वेदों में कहा गया है कि-

समनोमंत्रः समितिः समानी समानं मनः सह चिन्तमेषाम्।।

समानं मंत्रमभि मंत्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।।

वेदों मे सभी से एकत्व की भावना स्थापित की गई है, जिससे मोह, शोक, और दुःख का अभाव हो जाता है यह लौकिक जीवन की उत्कृष्टता से सम्बंद्ध नैतिक भावनाओं एवं आदर्श सद्गुणों का भी अद्भूत संदेश देता हैं । जो जन-जन के हृदय में परस्पर स्नेह, प्रेम मैत्री, सद्भाव तथा समन्वय की भावना को प्रसारित करता है। समन्वय भावना वैदिक मूल्यपरक शिक्षा का प्राण है। प्रत्येक व्यक्ति परमात्मा का अंश है और सम्पूर्ण विश्व एक परिवार है।

"विश्वं भत्येकनीडम्।"

भारतीय संस्कृति के अनुसार श्रीमद्भागवत में समस्त वेदों व उपनिषदों का सार है। वेदों के अनुशीलता से तात्कालीन सामाजिक, धार्मिक,राजनीतिक एवं शैक्षिक व्यवस्था का ज्ञान जो सत् परिश्रम , सत् आचरण नैतिक मूल्यों द्वारा सर्वोत्कृष्ट चरित्र निर्माण की व्यवस्था पर आधारित थी । तत्कालीन ऋषि महर्षियों की दृष्टि में शिक्षा व्यक्तिगत सर्वांगीण विकास हेतु थी। मनुष्य की अन्तर्निहित प्रतिभा को प्रबुद्ध कर उसके दोषों , विकारों का परिमार्जन करना था। पुराणकालीन शिक्षा मात्र भौतिक उपलब्धियों तक सीमित नही थी अपितु वह गहन अध्ययन द्वारा छात्र को आत्म चिन्तन की ओर अग्रसर करती थी अतः शरीर ,मन, प्रज्ञा व अन्तरत्न मानव व्यक्तित्व के इन सभी पक्षों का समग्र विकास करना ही श्रीमद्भागवत पुराण कालीन शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य था। श्रीमद्भागवत गीता में उद्गृत है कि 'अध्यात्मविद्या विद्यमानः ' (भगवद्गीता १०/३२), अर्थात शिक्षा अखण्ड का बोध कराने वाली शिक्षा अध्यात्मपरक होनी चाहिए, वस्तुपरक नही। शिक्षा छात्र के आत्मोकर्ष का साधन होती है, न मात्र पठन-पाठन सामग्री व वस्तुओं के ज्ञान का संग्रह। शिक्षा का धर्म है, व मनुष्य के आन्तरिक व्यक्तित्व का परिषकार करे न कि वाह्य भौतिक वस्तुओं को मात्र संकलन करे।

वेदवाद्रतों न स्थान्न पाखण्डी न हैतुकः।
शुष्कवाद विवादे न कंचित पंक्ष समाश्रेयत।।(भागवत पुराण -११/१८/२०)

अर्थात तत्काल में शिक्षा मोक्ष पर्याय थी, जिसका साध्य ब्रम्हचार्यश्रेय था। जिसके अर्न्तगत गुरूओं द्वारा शिष्य को उदात्त बनाने व उन्नत की दिशा में विकसित करने के लिए शिष्य के अन्तःकरण में सार्वभौमिक मूल्यो को प्रवेश कराया जाता था जिसके प्रभाव से छात्र के गुण , कर्म, स्वभाव समुन्नत स्तर को प्राप्त करते थे। ब्रम्हचर्य आश्रम में प्रवेश करने वाले शिष्य के लिए कुछ नियमों का उल्लेख किया गया है जिनका परिपालन करना प्रत्येक शिष्य का कर्तव्य होता था। क्योकि पुराणकालीन शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य शिवमशील चरित्र का निर्माण करना था। यह चरित्र नैतिक गुणो का समष्टि था, उसका सदाचार व्यवहारिक स्वरूप नैतिक ताप यही लक्षण उस शिष्य के मानवीय व्यहार में अविष्ट होने पर ही उसका चरित्र नैतिक गुणों युक्त कहलाता था। गुरू की आज्ञा का पालन शिष्य के लिए प्रथम आवश्यक था क्योंकि तात्कालीन समाज में गुरू शिष्य के परम पिता के समान था। वही उसका सर्वश्रेष्ठ उसके आचार से निर्धारित होता था। यह नैतिकता ही आत्मिक संकल्प के द्वारा समाज को मर्यादित व अनुशासित करती थी। नैतिक मूल्यों का शिष्य के जीवन में प्रविष्ठ कराना ही गुरू का उद्देश्य था। जिसके लिए उन्होंनें परिवेश को भी अत्यधिक महत्व प्रदान किया है। प्रकृति के समीप रह कर शिष्य वृक्ष व वनस्तीयों से प्रेम की भावना को समझना और उनका संरक्षण करना अपना कर्तव्य समझता था। भौतिकता व विलासिता से भिन्न शतत् प्रकृति के मध्य प्राप्त शिक्षा को कष्ट सहिष्णु ,संयमी, उदार ,परिश्रमी बनाती थी ।

शिक्षा व ज्ञान का विकास ही मनुष्य के समाज और सभ्यता के विकास की मूल प्रेरणा रहा है। श्रीमदभागवत कालीन शिक्षा प्रणाली के अर्न्तगत शिक्षा का उद्देश्य मात्र किसी बालक को जीविकार्जन के लिए शिक्षित करना ही नही था अपितु शिष्य के रूप में एक विनित और उपयोगी नागरिक का निर्माण सम्भव करना था समाज के उस अंग को परिष्कृत करना था जिसके माध्यम से गौर्वान्वित युग का निर्माण संभव हो सके। नैतिक मूल्यों के पालन से ही विद्यार्थीयों की वृत्तियों का उत्थान व सामाजिक दायित्वों का निष्पादन संभव हो सके।

ऋग्वेद में नीतिशब्द का प्रयोग अभीष्ट फल की प्राप्ति के लिए किया गया है। धर्म, अर्थ, काम, तथा कोक्ष इन चार पुरूषार्थों तथा इन्हें प्राप्त करने के उपायों का निर्देश जिसके द्वारा किया जाता है उसे नीति कहते है। मानव यदि नीति वचनों के अनुसार अपने व्यवहारों का निर्वहन करता है। तो अपना अभीष्ट फल प्राप्त करता है। शरीर में विद्वयमान आत्मा पुरूष के रूप में अभिहित किया जाता है। और उसका अभीष्ट पुरूषार्थ मानव कर्म सप्तैषणाओं में अन्तर्भूत रहता है। धर्म, अर्थ तथा काम कर्मणीय माना जाता है। मोक्ष में कर्म का अभाव रहता है। धर्मतत्व अर्थ तथा काम को मर्यादित ढंग से करने पर लौकिक सुख तथा मोक्षपटक निःश्रेयस की प्राप्ति में सहायक होता है। कणाद के अनुसार यतोत्भ्युदयनि श्रेयस सिद्धि स धर्म अर्थात लौकिक अभ्युदय एवं अलौकिक श्रेयस की सिद्धि ही धर्म है। समाज में धर्म कर्तव्य के रूप में है। अर्थशास्त्र में अर्थ का वाक्षिंत फल देने वाला माना गया है। शुक्रनीति में मोक्ष को

भी अर्थाधीन माना गया है। आनन्दानुभूति की कामना ही काम है। विवके समस्त वंश परम्परा को बनायें रखने के लिए काम पुरूषार्थ हैं। काम को गृहस्थाश्रम का पवित्र धर्म तथा संतानोत्पत्ति के लिए प्रतिष्ठित किया गया।गृहस्थ आश्रम पूरी सामाजिक व्यवस्था की रीढ़ है। प्रेम और सौहार्द ही आदर्श परिवार के सदस्यों में पारस्परिक सम्बन्ध मधुर और सुखदायी हो ऐसे ही परिवार सदैव फलतें-फूलतें और सुखी रहते है-

अनुव्रतः पितुः पुत्रों माता भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमंती वाचं बदतु शान्तिवाम्।

.

मोक्ष को मानव का चरम लक्ष्य माना गया है। वेदों में नैतिक मर्यादाओं का प्रतिपादन किया गया है। मानव में प्रेम , दया सौहार्द की भावना होने पर ही व समाज के विकास में सहायक हो सकता है। तथा अपनी सभ्यता एवं संस्कृति को श्रेष्ठ उन्नत बनाकर राष्ट्रीय परम्पराओं एवं संस्कृति को संरक्षित कर सकते है।

कर्माकर्म विवके को ही नीति कहा गया हैं। समाज में व्यक्ति, परिवार,जाति, वर्ग राष्ट्र आदि भिन्न-भिन्न घटक होते है। समाज में व्यक्ति जाति संस्था वर्ग, राष्ट्र को कैसा व्यवहार करना चाहिए इसी का उपदेश देना नीतिशास्त्र है।राज्य के सर्वविध अभ्युदय के लिए राजनीति, धार्मिक अभ्युदय के प्राप्ति के लिए धर्मनीति और जीवन के विविध क्षेत्रों में सफलता प्राप्ति करने हेतु व्यवहारनीति ,समृद्धि के लिए अर्थनीति, इसी प्रकार दुश्मनों से निपटने के शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए कूटनीति का आश्रय ग्रहण करना चाहिए। संसार का प्रत्येक प्राणी सुख का आकांक्षा रखता है और नीति का आश्रयण भी वह अपने सुख के लिए ही करता है। कोई भी व्यक्ति अपनी विपत्ति के लिए नीति का आश्रय नही लेता चाणक्य का कथन है कि - **“सुखश्य मूलं धर्मः:।** ”इसलिए सर्वोत्म नीति धर्माचरण ही है।

धर्म मानव मात्र का एक ऐसा उचित कर्तव्य है जिसका पालन करने से व्यक्ति , समाज ,राष्ट्र तथा सम्पूर्ण लोगों की स्थिति सत्ता अक्षुण्ण बनी रहती है। जिसके कारण मानव इस लोक मे अभ्युदय तथा परलोक में परमात्मा की प्राप्ति रूप निःश्रेयस् को प्राप्त कर लेता है। वेद, उपनिषद्,रामायण, महाभारत ,पुराण आदि में नीति तत्व का कथन विशेष रू॰ से मनुष्य को सुसंस्कृत बनाने के लिए किसा गया है। राष्ट्रीय एकता एवम अखण्डता को अक्षुण्ण वेद प्रतिपादित नीति पूर्ण उपदेश लोक मंगल की भावना से ही अनुस्यूत है। आत्म कल्याण का संदेश प्रदान करने वाले उपनिषदों को तो नीति सूक्तों का भण्डार माना गया है। मनुष्य मात्र को स्वमं अपने कर्मों का साक्षी कहा गया है। मनुष्य को चाहिए कि वह मन, वाणी तथा क्रिया द्वारा पाप कर्म न करे । क्योंकि जीव जैसा करता है ,वैसा ही फल पाता है।

१- सत्यपथ पर चलनाः- नीतिकारों ने सत्यवचन पर बल दिया है। सत्य जीवन वह अकाट्य धर्म है, जिससे मनुष्य को सामाजिक तथा व्यवहारिक जीवन में प्रतिष्ठा प्रदान करता है। मुण्डकोपनिषद का उद्घोष है - 'सत्यमेंव जायते नानृतम।' विजय सत्य की होती है असत्य की नही अर्थात् सत्य बोलना चाहिए।, प्रिय बोलना चाहिए। प्रिय भी अत्य हो तो नही बोलना चाहिए। विद्यापूर्ण करके समाज में जाने वले विद्यार्थी के लिए गुरू उपदेश देते है। स्तैतिरीय उपनिषद् में

''सत्य वद् धर्म का चर, स्वात्यायान्मा प्रमदः।'' अर्थात् सत्य बोलों, धर्म का आचरण करों,स्वाध्याय में प्रमाद न करों मातृदेवों भव,पितृदवों भव, आचार्यदेवों भव, अतिथिदेवों भवः,''।माता में देव वुद्धि रखने वाले बनों पिता में देव बुद्धि रखने वाले बनों आचार्य (गुरू) मे देव वुद्धि रखने वाले बनो तथा अतिथि में देव बुद्धि रखने वाल बनों। मनुष्य को स्वयं अपने कर्मों का साक्षी माना गया है। मनुष्य को चाहिए कि वह मन, वाणी तथा कर्म द्वारा पाप न करें। क्यों कि जीव जैसा कर्म करता है। वैसा ही फल पाता है।

अहिंसा का अनुसरणः- सब प्राणियों के लिए अहिंसा ही सर्वोंतम कर्तव्य है। सद्भावना एवं अहिंसा ही देवताओं को प्राप्त करने का साधन है। महाभारत में युद्धिष्ठिर को उपदेश देते हुए भीष्म ने कहा है- अहिंसा ही परम धर्म, परम तप और परम सत्य है।

मित्रता की भावनाः- शुक्रनीति कहती है कि बिना सोचे समझे किसी को मित्र न बनाए, दुरदर्शी बने। किसी के साथ कपटपूर्ण व्यवहार तथा किसी की आजीविका को हानि नही पहुँचानी चाहिए।कभी भी किसी का अहित न सोचना चाहिए न करना चाहिए।

ऋग्वेद में मंत्र है ''बन्धुमैं माता पृथिवी महीयम।।'' यह नैतिक वाक्य विश्व बन्धूत्व की भावना को जन्म देता है। यजुर्वेद में यह कामना की गई है कि सभी प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखें।

आसक्ति का त्यागः- मार्कण्डेयपुराण में आसक्ति के सर्वथा त्याग की शिक्षा प्रदान की गई है यदि आसक्ति का त्याग किसी कारण से नही कर पाते तो वहॉ सज्जनों की संगति में आसक्ति लगादेनी चाहिए।

दान का महत्वः- सभी दान में अन्यदान सबसे उत्तमू माना गया है। अन्नदान सभी को प्रशन्न करने वाला, पुण्यजनक तथा बल ओर पुष्टि को बढ़ाने वाला है। तीनों लोक में अन्नदान के समान अन्य कोई दान नही इससे समाज के भूखे लोगों का भी पेट भर जाता है।

तृष्णा सबसे बड़ा पाप ः- महाभारत मे तृष्णा को सबसे बड़ा पाप माना गया है। वह मनूष्य जो अधर्म काम में लगा रहता है अपने कर्तव्य का पालन नही करता हैं। तृष्णा का कही अन्त नहीं है संतोष ही परम सुख है।

एकता की भावना ः- ईश्वर सर्वव्यापी है। जगत की सभी वस्तुओं का उपभोग त्यागपूर्वक ही करनी चाहिए। धन तथा सम्पत्ति का लोभ नही करना चाहिए। वेदों में कहा गया है। जो अकेले ही भोज्य पदार्थ ग्रहण करता है। वह अकेले ही पाप का भागी बनता है। ऋग्वेद के अन्तिम सूक्त में मन, वचन से एक होना देवताओं को प्राप्त करना हैं। इस प्रकार मनुष्य एक साथ होकर चले, बोले, मन भी एक हो। वैदिक आदर्श विश्व को ही एक परिवार मानने की भावना का जनक कहा जा सकता है।

यदि हम वैदिक नीतिगत मूल्यों में वर्णित मानवीय मूल्यों को स्थापित करे तो मानवीय भावनाओं का विकास होगा तथा समाज भी सुदृढ़ होगा। वेदों में निहित मानवीय मूल्यों का सम्बन्ध किसी युग विशेष ,देश-विदेश या जाति विशेष से न होकर मानवीय विकास एवं कल्याण की अर्न्तचेतना से है। पारस्परिक एकता, सहयोग सद्भाव एवं संगठन आदि के अनेक मूल्य वेद मत्रों में सुरक्षित है। यद्यपि समय के परिवर्तन के साथ-साथ मानव की मान्यताएं, सिद्धान्त

परिवर्तित होते रहते है। परन्तु वैदिक मानवीय मूल्य आज भी शाश्वत एवं प्रगति में सहायक है। वर्तमान समय मे जो आतकंवाद, भ्रष्टाचार, हिंसा, जातिवाद, भाषावाद, क्षेत्रवाद, आदि की विभीषिका से हमारा देश आहत है। उसके निदान के लिए नीतिशास्त्र, के नीति वचनों का सहारा लेकर राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता को बनाये रखा जा सकता है। सत्यवचन बोलना, दूसरों की भलाई करना, सद्भाव बनाए रखना, किसी की निन्दा न करना, किसी के धन पर लालच न करना, हिंसा आदि न करना आदर्श समाज का जनक माना जा सकता है।

सन्दर्भ-

१-अल्तेकर ए. एस. एजूकेशन इन एन्शियेण्ट इण्डिया।

२-मुखर्जी, आर. के. एजूकेशन इन एन्शियेण्ट इण्डिया पृष्ठ ५५-५६

३-बाशम ए. एल. अद्भूत भारत पृष्ठ१६३

४-द्विजेन्द्र नारायण एवं श्री माली कृष्ण मोहन प्रचीन भारत का इतिहास पृष्ठ १३७

६-ऋग्वेद- १०/१६१/२, १२/१६१/२, १०/१६१/४

७-श्रीमद्भागवत, २/६२, ६३

८-ऋग्वेद- १/६०/१

६-महाभारत शान्तिपर्व, १६७/६

१०-महाभारत कर्मपर्व, १०६/५८

११-अर्थ एवं प्रधान इति कौटिल्यः अर्थमूलौ हि धर्मकामौ।।- अर्थशास्त्र, १/७/११

१२- कल्याण, शिक्षांक सम्पादक - राधेश्याम खेमका , गीताप्रेस , गोरखपुर, १६८८,भारत में प्राचीन तथा आधुनिक शिक्षा, श्री परिपूर्णनानन्द जी वर्मा पृष्ठ २२५